

## भारतीय चिन्तन व शिक्षा के उद्देश्य : एक नजरिया

□ चतरसिंह मेहता

शिक्षा का दर्शन से गहरा रिश्ता है, ऐसे में स्वाभाविक ही है कि भारत में भी शिक्षा के संदर्भ अक्सर दर्शन में जाकर खुलते हैं। देश में शिक्षा को जब मैकाले के बाबू बनाने वाले लक्ष्य से हटा कर विस्तृत अर्थ प्रदान करने की कोशिश की जाती है तो इसे दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में रखने की जरूरत पड़ती है। लेकिन इस उपक्रम में देखा जाता है कि कुछ लोग शिक्षा का अतीतान्मुख स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। अथवा एक नितान्त आदर्शवादी वाग्जाल का सहारा लिया जाता है। स्वतंत्रता के उपरांत, शिक्षा पर बने कई आयोग और शिक्षाविद् शिक्षा के बड़े आदर्श और ध्येय प्रस्तुत करते रहे हैं लेकिन विडम्बनाजनक स्थिति यह है कि पिछले पांच दशक में ये आदर्श व्यवहार में कभी नहीं उतर पाये। बहरहाल, शिक्षा को लेकर यह नजरिया बरकरार है जिस पर विचार होना चाहिए। प्रस्तुत आलेख ऐसा ही एक जरूरी उपक्रम है।

‘सा विद्या या विमुक्तये’- विद्या वही है जिससे भौतिक, दैहिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं से मुक्ति प्राप्त हो। विद्या की परिभाषा यही है कि जो मुक्त करे वही विद्या है। जिस विद्या से मुक्ति का आनन्द उपलब्ध न हो तो उसे अविद्या ही कहा जाना चाहिये। विद्यालयों की संख्या बढ़ रही है, परन्तु मनुष्य मुक्त होता दिखाई नहीं पड़ता, उल्टा और भी बंधता जा रहा है, जकड़ता जा रहा है, नीचे गिरता जा रहा है। एक तरफ सूचनाएं और जानकारियां बढ़ती जा रही हैं जिसे हम ज्ञान कह रहे हैं और दूसरी ओर मनुष्यता घटती हुई मालूम हो रही है। एक तरफ मनुष्य की बुद्धि विकसित हो रही है तो दूसरी ओर उसकी आत्मा टूटती हुई मालूम पड़ रही है। शिक्षा की बुनियादी समस्याओं की चर्चा करते हुए सभी वर्गों के लोग यही कहते हैं कि आज की शिक्षा हमारे अनुकूल नहीं है, हमारे देश के लोगों की आवश्यकता पूरी नहीं करती है, इसमें आमूल-चूल परिवर्तन होना चाहिए।

कहीं कोई बुनियादी भूल है। यह बढ़ती हुई विद्या कहीं अविद्या तो नहीं? आज किसी भी सदी से ज्यादा विद्या है, ज्यादा विद्यालय हैं, लेकिन सारे जगत में पिछली किसी भी सदी से ज्यादा अशांति है, ज्यादा दुःख है, ज्यादा पीड़ा है। शिक्षा आज मात्र पेट भरने का एक साधन मात्र रह गई है। आज अनेक विद्वान यह मानने लगे हैं कि भारतीय शिक्षा न तो भारतीय है और न शिक्षा।

### सत्यं वद धर्मम् चर

प्राचीन काल में शिक्षा सामाजिक दायित्वों एवं कर्तव्यों से भली-भांति जुड़ी हुई थी। वह व्यक्ति के तीन ऋणों-पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण से उऋण होने के लिए तैयार करती थी। तैत्तरीय उपनिषद में एक सजीव व विस्तृत चित्रण है। जब आचार्य

शिष्य को गुरुकुल से विदा लेते समय व्यावहारिक उपदेश देता था - ‘सत्यं वद। धर्मम् चर। स्वाध्यायान मा प्रमदः।’ वस्तुतः यही शिक्षा का सार है। आचार्य शिष्य से अपने उपदेशों का अन्धानुकरण करने के लिए नहीं कहता, अपितु यह कहता है कि जो हमारे सत् आचरण हैं, उन्हीं का पालन करना, असत् का नहीं। इसके अतिरिक्त आचार्य यह भी कहता है कि आश्रम शिक्षा तो समाप्त हो गई है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ज्ञानार्जन की प्रक्रिया समाप्त हो गई। उसका विशेष उपदेश होता था कि स्वाध्याय से कभी विमुख नहीं होना। स्वाध्याय का अर्थ केवल पढ़ना-लिखना नहीं बल्कि गहराई से ज्ञान प्राप्त करना है। वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश, गुप्तधन, तृतीय नेत्र, आदि नामों से अलंकृत किया जाता था। इसके द्वारा आत्मसंयम, धैर्य, कर्तव्य निष्ठा की शिक्षा मिलती थी। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में प्राचीन काल से ही भारतवासी ईश्वर के प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में धार्मिक भावना से अत्यंत प्रभावित रहे हैं। विद्या, दृष्टि और बोध ही उपनिषद का लक्ष्य है (‘सत्य की ओर’)। हुमायूं कबीर ने भी लिखा कि सभी भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य जन्म-मरण के आवर्त चक्र से मुक्ति और ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करना है (भारतीय शिक्षा दर्शन पृ.175)

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली 19 वीं सदी के चौथे दशक में मैकाले की प्रसिद्ध रिपोर्ट से आरंभ होती है जिसका उद्देश्य अंग्रेजी शासन के लिए लिपिक तैयार करना था जो उन्हें शासन चलाने में मदद दे सकें। ऐसे लिपिक मन व मस्तिष्क से अंग्रेज परन्तु शरीर से भारतीय हों। कमोवेश वही प्रणाली आज भी चालू है। कुछ संरचनात्मक परिवर्तन जरूर हुए, बाहरी रूप कुछ बदला परन्तु आत्मा में खिलावट नहीं आई। फिर भी अनेक विचारकों एवं

आयोगों ने भारतीय जीवन दर्शन के अनुसार नई शिक्षा पद्धति को तैयार करने पर बल दिया ।

### अन्तरंग की अभिव्यक्ति

श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने विदेशी प्रभाव स्वीकार करते हुए भी भारतीय दर्शन को आधार बनाया । प्राचीन भारतीय ऋषियों की भांति उन्होंने एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित किया जिसमें व्यापकता और समष्टि की अनुभूति का व्यक्ति के महत्व और प्रतिष्ठा के साथ समुचित समन्वय किया जा सके । उनका मत था कि शिक्षा का उद्देश्य आत्मा का स्वातन्त्र्य और अंतिम दिशा में अग्रसर होना है जो कि हमें धूल और कचरे से मुक्त कर सम्पदा प्रदान करती है, भौतिक पदार्थों की नहीं अपितु अन्तर्ज्योति की, शक्ति की नहीं वरन् प्रेम की । उन्होंने सच्ची स्वतंत्रता की परिभाषा देते हुए बताया कि वह तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब कि बालक उन कौशलों से सुसज्जित हो जो उसके जीवन यापन में सहायक हों और साथ ही अपनी समस्याओं को सहानुभूति से समझ कर एक उपयोगी नागरिक की तरह हल कर सके और अपनी विभिन्न मौलिक क्षमताओं को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दे सके ।

यही बात योगीराज अरविन्द ने कही । उनके अनुसार बालक की शिक्षा का उद्देश्य उसकी प्रकृति में जो कुछ सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अन्तरंग और जीवन पूर्ण है, उसे अभिव्यक्त करना होना चाहिये । इस प्रकार उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य आत्म शिक्षा है । इस प्रक्रिया में शिक्षार्थी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों, शिक्षालयों और पुस्तकों का उपयोग करता है । श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य में सुप्त शक्तियों का अनावरण एवं विकास करना है । परन्तु शारीरिक शिक्षा के बिना मानसिक शिक्षा अधूरी होती है क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का पूर्ण विकास है । शरीर सभी कर्मों का माध्यम है, अतः उन्होंने शिक्षा में शारीरिक शिक्षा पर भी पर्याप्त बल दिया ।

स्वामी विवेकानन्द भारतीय नव जागरण के अग्रदूत थे । उन्होंने भी शिक्षा के उद्देश्यों को व्यापक रूप से स्पष्ट किया । उन्होंने कहा था, “शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का विकास है । वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उसकी चारित्र्य शक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनके मन में परहित भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती, क्या उसे भी हम शिक्षा नाम दे सकते हैं ?” शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था - “सभी शिक्षाओं के अभ्यासों का उद्देश्य मनुष्य निर्माण ही है । जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर

फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है ।” स्वामी जी ने शिक्षा को ज्ञान का पर्याय मानकर, जीवन निर्माण, मनुष्यत्व के विकास एवं चरित्र गठन का साधन माना है । उनका कहना था - “शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दी गई है और वहां पड़े-पड़े तुम्हारे सारे जीवन भर बिना पचाये सड़ रही है । हमें तो भावों या विचारों को ऐसे आत्मसात कर लेना चाहिये जिससे मनुष्यत्व आये और चरित्र का गठन हो । यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े संत और विश्वकोश ऋषि बन जाते ।”

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति और नवीन यूरोपीय शिक्षा व ज्ञान-विज्ञान दोनों के समन्वय का स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समर्थन किया ताकि भारतवासी अपनी सांस्कृतिक पीठिका के साथ आधुनिक वैज्ञानिक युग में पदार्पण कर सकें । उन्होंने शिक्षा द्वारा सदाचार, नैतिकता, सद्ज्ञान सामाजिक सुधार को प्राथमिकता दी । वे भी शिक्षा का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक विकास ही मानते थे ।

महात्मा गांधी भी शिक्षा का उद्देश्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन व आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसका पूरी तरह प्रस्फुटन मानते थे । उनके अनुसार आत्मा का विकास ही चरित्र निर्माण है । यह व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने तथा आत्म साक्षात्कार के योग्य भी बनाता है । आत्मा के संस्कार के बिना सब शिक्षा बेकार ही नहीं, घातक भी हो सकती है । उनकी दृष्टि में स्वावलम्बन ही शिक्षा की सही कसौटी है ।

### विज्ञान व स्व-ज्ञान का समन्वय

‘ओकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग’ सीरीज प्रथम और ‘राधाकृष्णन स्पीचेज एण्ड राइटिंग’ के अनुसार डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का कहना था- “वही शिक्षा पद्धति संतोषप्रद गिनी जाती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति का संतुलित विकास करना हो और जो ज्ञान व विवेक दोनों पर बल दे ‘ज्ञान विज्ञान सहितम्’ । जो सिर्फ बुद्धि को ही प्रशिक्षित नहीं करे अपितु लोगों के हृदय में उदारता का भाव भरे । यदि हमारे पास कोई सामान्य दर्शन या जीवन यापन का नजरिया नहीं होगा तो हमारे दिमाग भ्रांत हो जायेंगे और हम लोभ, भय, चिन्ता व पराजय भाव से ग्रसित हो जायेंगे । मानवता के लिए भौतिक गंदगी के बजाय मानसिक गन्दगी अधिक खतरनाक है ।” उनके अनुसार जब हम राष्ट्रीय शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा मतलब यह नहीं होता कि भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, इंजीनियरिंग और टेकनोलॉजी को देशों की सीमा के साथ बदला जाना चाहिये, उसका मतलब यह है कि हमारी अपनी एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है, मूल्यों की एक परम्परा है, जिनसे छात्रों को

परिचित कराना है। भारत कोई भौगोलिक कपोल कल्पना मात्र नहीं है अपितु एक जीवन्त आत्मा है। 'द क्रिएटिव लाइफ' नामक पुस्तक में उन्होंने कहा कि शिक्षा सूचना मात्र नहीं है और न ही तकनीकी कौशल है।

महान विचारक व शिक्षक जे. कृष्णमूर्ति भी सिर्फ ज्ञान के संग्रह व संकलन और विषयों की सुसंगत जानकारी को शिक्षा नहीं मानते थे। उनके अनुसार संपूर्ण रीति से जीवन का मर्म समझना ही सच्ची शिक्षा है। उन्होंने एक निबन्ध में लिखा था - "अज्ञानी मनुष्य वह नहीं है जो अशिक्षित है अपितु वह है जो अपने आपको नहीं पहचानता। समझ सिर्फ स्वज्ञान से प्राप्त होती है और अपने मन की समस्त प्रक्रियाओं को जानना ही स्वज्ञान है।" कृष्णमूर्ति जीवन की एकांगिकता को पोषित करने वाली शिक्षा पद्धति को अस्वीकार करते हैं। अपने विद्यालयों का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था- "इन विद्यालयों का प्रयोजन बालकों को सर्वोत्कृष्ट तकनीकी क्षमताओं से युक्त करना है - ताकि वे आधुनिक विश्व में स्पष्टता और निपुणता पूर्वक अपना काम चला सकें। साथ ही साथ बालकों के लिये हमें ऐसा बढ़िया वातावरण बनाना है कि वे पूर्ण मानव के रूप में विकसित हो सकें। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हें परोपकारी व कल्याणकारी वातावरण में तैयार किया जाए।"

### अस्तित्व का सवाल

राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर में सन् 1989 में दिये भाषण में शिक्षा आयोग के अध्यक्ष व प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. दौलतसिंह कोठारी ने कहा था - चरित्र निर्माण करना ही शिक्षा की मूल भूमिका है। दुर्भाग्य यह है कि इस अवधारणा को समुचित महत्व नहीं मिलता। लेकिन अब शिक्षा और विशेषतः विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को विकसित करने की चेतना निरन्तर बढ़ रही है। इस संबंध में 20 नवम्बर, 1950 को आइन्सटीन ने जो भाषण दिया था वह आज के आणविक युग में भी उतना ही प्रेरक और प्रासंगिक है। उन्होंने कहा था - "मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास यही होना चाहिये कि वह अपने कार्यों में नैतिकता पर जोर दे। हमारा आंतरिक संतुलन और यहां तक कि हमारा अस्तित्व भी इस बात पर निर्भर है। कार्यों की नैतिकता ही हमारे जीवन को प्रतिष्ठा एवं सौन्दर्य दे सकती है।" डॉ. कोठारी का कहना था कि शायद शिक्षा का सबसे पहला काम यही है कि हम नैतिकता को एक जीवन्त शक्ति बनायें तथा इसे स्फटिक चेतना का रूप दें।

आजाद स्मृति व्याख्यानमाला में जो बात पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कही थी वह शिक्षा के सही उद्देश्यों को उजागर करती है। उन्होंने कहा था - "क्या हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी की

प्रगति को मस्तिष्क व आत्मा की प्रगति के साथ जोड़ सकते हैं? हम विज्ञान के साथ झूठे नहीं हो सकते क्योंकि वह आजकल जीवन के मूलभूत तथ्यों का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार हम उन आवश्यक सिद्धांतों को भी नहीं झुठला सकते जिनकी भारत ने युगों तक पैरवी की है। हमें चाहिये कि हम पूरी ताकत एवं ऊर्जा के साथ औद्योगिक प्रगति की ओर बढ़ें पर साथ ही याद रखें कि सहन शक्ति, विवेक एवं उदारता से रहित भौतिक उन्नति अन्ततः राख के ढेर में बदलने वाली है।"

### तमसो मा ज्योतिर्गमय

पंडित जनार्दनराय नागर ने 'शाला में बालक' नामक पुस्तक में कहा है - "आज हमारी दृष्टि धरती, आकाश और जल के पांच तत्वों के वैभव से हट कर आत्मा के मधुमय वैभव की ओर मुड़नी चाहिये। सृष्टि की उपासना कर हमने उसे अपना कारागार बना लिया है। इसलिए हमारे ज्ञान विकृत, हमारे क्षात्र तेज मंद और निष्प्रभ, धन शक्तियां राक्षसी और कुरूप, हमारे सेवा बल दीन और असंतुष्ट हो गये हैं। सृष्टि को समझकर यदि हम उसे आत्मोत्थान के लिए साधन बनाते तो आज अधिकार पर नहीं, कर्तव्य पर हमारे रथ चलते। आज शिक्षक को बालकों को सम्यक कर्म की ओर, सम्यक ज्ञान की ओर ले जाना है। वह उनको असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर ही ले जाये।"

प्रमुख चिन्तक डॉ. छगन मोहता ने सन् 1985 में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा जयपुर में आयोजित सम्मेलन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर चर्चा करते हुए कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य कर्तव्य परायण, प्रलोभन मुक्त व भय मुक्त व्यक्ति का विकास करना तथा समाज का पुनर्गठन करना है। उनका कहना था कि सरकार कानून के जोर से समाज को बदलने की कोशिश करती है जो संभव नहीं है अतः शिक्षा के माध्यम से ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। भीतरी रोशनी शिक्षा से ही लाई जा सकती है। भीतरी रोशनी होने पर जो भी दिखाई देगा वह सत्य होगा।

विश्व संस्था यूनेस्को के घोषणा पत्र के प्रारंभिक शब्द हैं - "चूंकि युद्ध मानव के मस्तिष्क में शुरू होते हैं, अतः शांति की मोर्चा बन्दी का निर्माण भी मस्तिष्क में ही होना चाहिये।" दिमाग सद्गुणों या भ्रष्ट आचरणों दोनों का उद्गम है। जो व्यक्ति किसी युद्ध में हजारों व्यक्तियों को जीतता है उसकी तुलना में वह व्यक्ति कहीं बड़ा है जो स्वयं को जीतता है। वही सबसे बड़ा विजेता है। यह जीत भी भीतर प्रकाश होने पर ही संभव है। प्रकाश का अस्तित्व ही अंधकार से मुक्ति है और उस अस्तित्व का भान कराना ही शिक्षा है।

## विभिन्न आयोग - उद्देश्यों का निरूपण

मनुष्य के मन में शांति की मोर्चे बन्दी कैसे हो ? किस प्रकार इस वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के युग में शांति, सद्भाव व समरसता की गंगा बहे ? इन विषयों पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा पर गठित सभी आयोगों ने गंभीरता पूर्वक विचार किया और भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) स्वतंत्र भारत का पहला आयोग था। इसने देश में उच्च शिक्षा के विकास की समीक्षा की और भविष्य में उसके विस्तार तथा सुधार के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किये। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) ने यही कार्य माध्यमिक शिक्षा के लिए किया। इन दोनों आयोगों ने शिक्षा के उद्देश्य के रूप में सुनागरिक के गुणों का विकास एवं व्यक्ति के चरित्र निर्माण पर काफी जोर दिया। बाद में इस महत्वपूर्ण विषय पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद में भी विचार हुआ और श्रीप्रकाश समिति (1959) ने भी अपनी अभिशंषाएं प्रस्तुत की। चूंकि पूर्व में शिक्षा के खंडों पर विचार हुआ था अतः यह मांग उठी कि भारत सरकार ऐसा आयोग नियुक्त करे जो शिक्षा के संपूर्ण क्षेत्र पर विचार करे जिसमें प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा भी सम्मिलित हो। इसी क्रम में शिक्षा आयोग (1964-66) का गठन हुआ। आयोग के गठन के आदेश में अपेक्षा की गई कि वह शिक्षा के संपूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण व परीक्षण करे जिससे यथासंभव कम अवधि में एक संतुलित, एकीकृत और यथोचित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण हो और राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों में प्रभावशाली योगदान मिले।

शिक्षा पर बना यह आयोग पहला आयोग था जिसके सम्मुख व्यापक दृष्टि थी और जिसे शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली की खोज का कार्य सौंपा गया था। आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के कई तत्वों में जो दो प्रमुख तत्व निर्धारित किये, वे थे उसकी जड़ें भारतीय परम्परा में हों जिसे समय-समय पर प्रतिपादित और पुनर्परिभाषित किया गया हो और जिसका उस समाज से निकट सम्पर्क हो जिसका निर्माण संविधान में दी हुई रूपरेखा के आधार पर देश में करना चाहते हैं। ये दोनों ही उद्देश्य शिक्षा को समाज के ऐतिहासिक अतीत व वांछित भविष्य से जोड़ने का प्रयास करते हैं। शिक्षा आयोग ने इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये उन्हें सार रूप में नीचे दिया जा रहा है -

1. विज्ञान और तकनीकी के गहन अध्ययन के सहारे से व्यक्ति की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करना ताकि प्रत्येक व्यक्ति समाज का उत्पादन शील अंश बन सके। वह दूसरों पर निर्भर या भार न हो। वह शारीरिक श्रम के द्वारा मानसिक शक्ति या बुद्धि के द्वारा कला या शिल्प व्यवसाय, विज्ञान आदि के द्वारा समाज का एक

उपयोगी और उत्पादक अंश बने।

2. आधुनिक भारत के निर्माण के लिए सामाजिक, राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत बना कर लोकतांत्रिक शासन की जड़ें मजबूत करना ताकि समतावादी समाज की स्थापना हो सके।

3. सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करते हुए चरित्र निर्माण का प्रयास करना। नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति के बिना केवल समाज का उत्पादक अंश बन जाने से ही काम नहीं चल सकता और न सच्चा सुख ही प्राप्त हो सकता है। अतः इस पक्ष पर शिक्षा के हर स्तर पर पर्याप्त बल देना।

सन् 1968 में जारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भी माना कि शिक्षा का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन करने की क्षमता उत्पन्न करना ही नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य व्यक्ति के आध्यात्मिक, सामाजिक व्यक्तित्व का विकास करना भी है। शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता, प्रजातंत्र और समाजवाद को मजबूत बनाया जाना चाहिये। सन् 1986 में जारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया कि शिक्षा व्यक्ति के भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए एक आवश्यक तत्व है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत अन्य बिन्दुओं के साथ जनतांत्रिक मूल्यों के विकास पर बल दिया गया और क्रियान्वयन योजना में पाठ्यक्रम संरचना के अन्तर्गत उन मूल्यों पर पाठ्यसामग्री उपलब्ध कराने का आह्वान किया गया।

शिक्षा के उद्देश्यों के उपरोक्त विवरण को और भी संक्षिप्त करें तो प्रमुख रूप से दो उद्देश्य ही रह जाते हैं : (1) विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के माध्यम से व्यक्ति को अपने जीविकोपार्जन के लिए सक्षम बनाना और (2) सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के माध्यम से व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करना। वैसे अच्छे जनतांत्रिक नागरिक के गुण सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों में समाहित हो जाते हैं।

प्राचीन काल की मान्यताएं, भारत के आधुनिक चिन्तकों, शिक्षा शास्त्रियों और भविष्य दृष्टियों की मान्यताओं के विपरीत आज शिक्षा प्राप्त करने का एक मात्र उद्देश्य आर्थिक क्षमता का विकास और भौतिक प्रगति ही माना जा रहा है। यह भी सोचने की बात है कि आज की शिक्षा लोगों को जीविकोपार्जन के लिये भी सहायक हुई है या नहीं।

### प्रस्ताव स्वीकार पर क्रियान्विति नहीं

शिक्षा आयोग (1964-66) ने विज्ञान (जो वर्तमान और भविष्य की ताकत है) और आध्यात्मिकता (जो मानव जाति को भारतीय परम्परा की सर्वोत्तम देन है) के निकट सम्पर्क पर सबसे अधिक जोर दिया था। इस मुद्दे पर शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में

जो भी लिखा गया है उसके आधार स्वरूप आयोग में विचार हुआ था, उसका सारगर्भित विवेचन शिक्षा आयोग के सदस्य सचिव व प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री प्रो. जे.पी. नाईक ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा आयोग और उसके बाद' (1979) में दिया है। प्रो. नाईक लिखते हैं :

“आयोग का मत था कि भारत के विकास को सम्पूर्ण मानवता के विकास के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। इसका एक कारण तो यह है कि जनसंख्या की दृष्टि से हमारा देश संसार में दूसरे स्थान पर है अतः मानवता का बड़ा हिस्सा हमारे देश में है। दूसरा कारण यह है कि संसार अब अधिक अन्योन्याश्रित होता जा रहा है। इस वृहत्तर संदर्भ में मुख्य मुद्दा मनुष्य को ऐसे शिक्षित करना है जिससे वह स्वयं के साथ, और समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ शांति और समन्वय के साथ रह सके। यद्यपि ज्ञान में इतनी वृद्धि हो गई है परन्तु मानव को स्वयं अपने बारे में सबसे कम मालूम है। वह स्वयं अपने साथ नहीं रह सकता (या डरता भी है) और उसने अपने ऊपर नियंत्रण व अनुशासन रखने की प्राचीन परम्परा को त्याग दिया है। दूसरी ओर अपनी विजय और शोषण की अपनी अवधारणाओं में विस्तार करके उनको प्रकृति के साथ अपने संबंधों पर भी लागू करना आरंभ कर दिया है। विज्ञान ने उसकी इस क्षमता को हजार गुना बढ़ा दिया है। यह सत्य है कि इससे बड़ी मात्रा में भौतिक पदार्थों व सेवाओं में वृद्धि हुई है परन्तु इससे अनियन्त्रित उपभोक्तावाद, पर्यावरण का विनाश तथा विरल व अपूर्ण संसाधनों का रिक्तिकरण हुआ है और पृथ्वी के संसाधनों पर नियंत्रण के लिए राष्ट्रों में भगदड़ मच गई है। इसके परिणाम स्वरूप लाखों लोग असीम दुःख और पीड़ा झेल रहे हैं। सामाजिक और राजनैतिक तनावों में भयंकर वृद्धि हुई है। यदि सब विपत्तियों से छुटकारा पाना है तो मानव के स्वयं के साथ, प्रकृति के साथ और समाज के साथ संबंधों में प्रेम समन्वय और सेवा के सिद्धांतों के आधार पर परिवर्तन करना होगा। मानव को शिक्षित करना होगा कि वह स्वयं को जाने और अपने ऊपर विजय और नियंत्रण प्राप्त करे। अपने स्वयं के साथ संबंधों में इस बुनियादी परिवर्तन से प्रकृति और समाज के साथ और उसके संबंधों में वांछित परिवर्तन स्वयं ही आ जायेगा।”

आयोग का विचार था कि मानव के स्वयं अपने साथ संबंधों को बदलने के इस मूल कार्य में भारतीय परंपरा बहुत महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। हमारी परंपरा में सदा से आत्म ज्ञान, स्वयं पर विजय और अनुशासन पर बल दिया गया है। इसमें अहिंसा, अपरिग्रह, अनासक्ति और सब जीवों के प्रति प्रेम पर बल दिया गया है। आयोग का विचार था कि यदि व्यक्ति अपने अन्दर इन मूल्यों को विकसित करेगा तो वह विज्ञान और तकनीकी की

ताकतों पर नियंत्रण रख सकेगा और अपने ज्ञान का उपयोग सहृदयता से करेगा। वह लड़ने, मारने, विजयी होने, आधिपत्य जमाने और शोषण करने के लिये नहीं वरन् संरक्षण, प्रेम और सेवा के लिए कार्य करेगा। आयोग का विचार था कि भारतीयों का अपने प्रति कर्तव्य है कि वे इस रूपान्तरण को अपने देश में आरंभ करें। इसके लिये राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को अपनी पुरातन परम्पराओं से जोड़ना होगा और उन आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना होगा, जो हमारी परम्परा के आधार हैं।

प्रो. जे. पी. नाईक ने आगे कहा कि आयोग के विचारों से कोई सहमत हो या नहीं परन्तु जो मुद्दे उठाये गये हैं वे केवल मानव के विकास के लिये ही नहीं वरन् मानव जाति के विनाश को रोकने के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। वे कहते हैं कि यदि हम समस्या का महत्व स्वीकार करते हैं, परन्तु आयोग द्वारा अपने प्रतिवेदन में सुझाये गये सुझाव स्वीकार न हों तो हमें कोई वैकल्पिक और अधिक संतोषजनक उत्तर ढूँढने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा आयोग (1964-66) की उद्देश्यों पर की हुई महत्वपूर्ण अभिशंषा की क्रियान्विति की बारह वर्ष बाद की गई समीक्षा के आधार पर उनका मत था कि प्रस्तावों को सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों ने सामान्यतः स्वीकार किया पर बाधा यह रही कि इसका क्रियान्वयन बहुत उदासीन ढंग से किया गया। इस विषय पर उपदेशों की तो कोई कमी नहीं रही परन्तु ठोस शैक्षिक कार्य जिसकी सर्वाधिक आवश्यकता थी, बिल्कुल नहीं हुआ। यही हालत उनके द्वारा प्रकट विचारों के बीस वर्ष बाद भी बनी हुई है।

### ‘न च मे निवृत्ति’

महाभारत का एक प्रसंग है कि विदुर जी दुर्योधन के पास गये। पांडव तो वन में गये हुए थे। उसने उन्हें जुए में छल से हराया था। उनका राज्य ले लिया था। दुर्योधन का नाम चारों ओर गूँज रहा था। उस समय विदुरजी उनके पास गये और कहा - ‘वत्स। तुम्हारे सामने कोई सत्य कहने का साहस नहीं करता। सब आतंकित हैं। लेकिन तुम जो भी कर रहे हो, वह गलत है, अधर्म है। द्रोपदी तुम्हारी भाभी है। तुम उसका चीरहरण करो तो इसे धर्म कौन कहेगा? अपने भाइयों को छल से जुए में हराना भी उचित नहीं कहा जा सकता है?’ तब दुर्योधन ने उत्तर दिया - ‘काका, क्या आप जानते हैं कि मुझे इन बातों का पता नहीं है कि यह अधर्म है? क्या आप यह समझते हैं कि मैं धर्म के विषय में नहीं जानता? लेकिन मुश्किल यह है कि ‘जानामिधर्मम् न च मे प्रवृत्ति, जानामिधर्मम् न च मे निवृत्ति।’ धर्म क्या है, मैं यह जानता हूँ लेकिन उसकी पालना नहीं कर सकता। अधर्म क्या है, मैं यह जानता हूँ लेकिन उससे मुक्त नहीं हो सकता।’

प्रमुख शिक्षा चिन्तक मनुभाई पंचोली कहते हैं कि हम सब आंशिक रूप से ही सही, दुर्योधन हैं । शिक्षा किसे कहते हैं ? स्कूल कैसे चलाना चाहिये ? बालकों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये? इन बातों से हम सर्वथा अनभिज्ञ हों, ऐसा तो नहीं है ? लेकिन हम सब दुर्योधन होने के कारण कहते हैं ' न च मे निवृत्ति' । इस वृत्ति से मुक्त नहीं हो सकते । ऐसा क्यों है ?

### मन की चालाकियां

सब मन के खेल हैं । मन बहुत चालाक है । अगर कहें कि यह कठिन है तो मन कहेगा कि यह बात बस की नहीं है । अगर कहें कि आसान है तो मन कहेगा कि यह इतना आसान है कि केवल मूर्ख ही इस पर विश्वास करेंगे । यदि कुछ नहीं करना है तो मन हमेशा दलीलें देता रहेगा । जब दृष्टि समस्यामूलक होती है तो वैसा ही दिखाई पड़ता है । जब पहली बार भाप के इंजन का आविष्कार हुआ तो किसी को उस पर विश्वास नहीं हुआ । वही भाप जो रसोई घर में केतली में रोज़ दिखती है उससे एक इंजन चलेगा ? सैंकड़ों लोग ढोए जायेंगे, यह किसी को विश्वास नहीं हुआ । जब पहली रेलगाड़ी इंग्लैण्ड में रवाना हुई तो कोई उसमें बैठने को राजी नहीं हुआ । अनेक लोगों को रूपये दिये गये परन्तु आखिरी क्षण में भाग खड़े हुए । उन्होंने कहा कि पहली बात तो यह कि भाप जैसी सरल चीज़ यह चमत्कार नहीं कर सकती । दूसरी बात यह कि यदि गाड़ी चल पड़ी तो कौन जिम्मा लेगा कि यह रूक भी सकेगी ? अनुभव तो था नहीं तो जेल से बारह कैदी लाये गये । उन्हें मृत्यु दंड मिला हुआ था इसलिए गाड़ी रुकने की समस्या नहीं रही ।

### इतने संत हो गये

मन कहता है इतने संत व महान व्यक्ति हो गये, उन्होंने लोगों को ऊपर उठाया परन्तु दुनिया तो आज बदतर हो गई । उनसे ही कुछ नहीं हुआ तो फिर ..... ? हम समझते हैं कि मेरे पिता ने बहुत शिक्षा ली थी तो मैं अशिक्षित कैसे हूँ ? अब मुझे शिक्षा की कौनसी जरूरत है ? पिता कितने ही पढ़े लिखे हों, पूर्वज कितने ही नैतिक हों, किसी के खून में आगे पढ़ाई लिखाई और नैतिकता नहीं जाती । दुनिया में बड़े लोग पैदा होते हैं, बड़े समाज पैदा होते हैं लेकिन वह सब उसी पीढ़ी के साथ समाप्त हो जाता है । नई पीढ़ी को और प्रत्येक व्यक्ति को वहीं से शुरू करना पड़ता है जहां उनके बड़ों ने शुरू किया था । ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जितनी खोज हो चुकी होती है, दूसरा व्यक्ति उससे आगे बढ़ता है । पर ऐसा नैतिकता व आध्यात्मिकता के क्षेत्र में संभव नहीं है । जीवन का कोई भी सत्य खुद ही सीखना होता है जहां से दूसरे लोगों ने अंत किया वहां से प्रारंभ नहीं होता । इसलिए दुनिया में आध्यात्मिक

तल पर कोई विकास नहीं होता । मनीषी ओशो कहते हैं कि वह कभी नहीं होगा क्योंकि विकास दूसरे से नहीं आता, उसे लाने की चेष्टा अपनी और निजी होती है । और एक हमारा मन है जो नासमझी को समझ मान लेता है और उसके आधार पर टालता रहता है ।

### स्वज्ञान कठिन

मन समस्याएं पैदा करता है यह उसकी तरकीब है, किसी निर्णय को स्थगित करने की सोचते हैं, जब तक ठीक-ठीक पता नहीं तब तक मैं क्या कर सकता हूँ ? वह तर्क करता रहता है । कहता है - 'स्व' को जानना, उसे पाना बहुत कठिन है । पर की बात करना, उसे पाना आसान है । इसमें भौतिक सुख भी है अतः दौड़ तो जैसी दुनिया में चल रही है, उसमें ही अपने को सम्मिलित करना ठीक है । यदि दृष्टि साफ की जाये तो इस जगत में किसी ने कोई चीज़ नहीं पाई है जिसे वह अपनी कह सके और अपने साथ ले जा सके । दरअसल पाने का भ्रम हो सकता है और यह भ्रम मौत तोड़ देती है कि नहीं पाया था । पाना वही है जो मौत भी छीन न सके । मृत्यु मन को नहीं तोड़ पाती, मन साथ चला जाता है, 'स्व' साथ जाता है, 'पर' यहीं रह जाता है । संसार को पाना असंभव है, धर्म को पाना निजी है । सत्य बहुत सरल है पर व्यक्ति का मन बड़ा कठिन है । सभ्यता इसे और जटिल बनाती जा रही है और पागलपन की ओर ले जा रही है । अमेरिका में प्रति दिन पन्द्रह लाख से ज्यादा लोग अपने दिमाग के इलाज के लिए अस्पतालों में पहुंच रहे हैं । भारत में भी संख्या बढ़ रही है । आज विकास भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति रह गया है । मनुष्य के विकास की परिभाषा आनन्द, प्रेम, शांति नहीं रह गई है और मनुष्य अपने मन की इन्हीं तरकीबों से विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है ।

### साधना से नहीं, तर्क से निष्कर्ष

शिक्षा में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिस्थापना पर निष्कर्ष तर्क व विचार से निकाले जाते हैं । तर्क हमेशा दो धार वाले होते हैं । विचार सदा अतीत का होता है, मौलिक सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता । विचार कभी अज्ञात को नहीं छू सकता । इसीलिये पूर्व का जोर देखने पर, दर्शन पर, अनुभव से उत्पन्न ज्ञान पर रहा है, विचार या तर्क पर नहीं । जब कोई कृष्ण होता है, महावीर होता है, बुद्ध होता है, कणाद या पतंजलि होता है, रामकृष्ण या विवेकानन्द या अन्य आत्मज्ञानी होता है, जब कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता है तो वह उसके बारे में वक्तव्य देता है ।

ये वक्तव्य पाश्चात्य चिन्तकों के वक्तव्य से भिन्न होते हैं । पश्चिम में वे विचार से, तर्क से, पक्ष विपक्ष के मन्थन से निष्कर्षों पर पहुंचते हैं । उनके निष्कर्ष ध्यान की साधना से नहीं आते । कोई

सच्ची समस्या, कोई अस्तित्वगत समस्या, जीवन समस्या न तो विचार से पैदा होती है और न हल, पर एक हम हैं जो अस्तित्वगत समस्याओं पर साधना से नहीं, अनुभव करके नहीं, विचार व तर्क से निष्कर्ष देते हैं। मन को समझा लेते हैं और मानवता की बड़ी समस्याओं को टालते रहते हैं।

### हम तो सामान्य हैं

कहते हैं, जागना तो विशिष्ट लोगों की बात है, हम तो सामान्य लोग हैं। इस प्रकार के शिक्षक कहां है? असल में कोई मनुष्य सामान्य नहीं है लेकिन उसका पता जब तक नहीं चलता जब तक कि बोध जागना शुरू न हो जाये। जब तक ऐसा लगता है कि इस बीज में वृक्ष है या नहीं। लेकिन ऐसा कोई बीज नहीं जिसमें वृक्ष न हो। प्रमाण तो तभी मिलता है जब अंकुर फूटें। बिना प्रयास व साहस के यह कैसे हो? हर शिक्षक व बालक में सभी संभावनाएं मौजूद हैं। आनन्द हर व्यक्ति का स्वभाव है, उसका स्वरूप है। कोई दुख नहीं चाहता क्योंकि वह विजातीय है। कोई उस आनंद का परिचय तो कराये? कोई परतें तो उघाड़े, अंदर स्रोत मौजूद है। कभी कभी यह सोच भी कि मैं तो ठीक हूं पर बाकी लोग ऐसे नहीं हो सकते, एक अच्छी संकल्पना को आगे बढ़ाने और विश्वास पैदा करने में बाधक बनते हैं। आज जरूरत है संकल्प की, सातत्य की और साथ ही प्रतीक्षा और धैर्य की। यह सब हमने खो दिया है और इसीलिए जे. पी. नाईक ने ठीक ही कहा था कि हमने अपने भविष्य को हमारे अतीत से जोड़ने को स्वीकार तो किया पर उसकी क्रियान्विति नहीं की।

### कथनी व करनी में भेद

हमारे तथाकथित शिक्षाविद् और शिक्षा प्रशासक (जो मुख्यतः सामान्य प्रशासक हैं) सच्चे नहीं हैं। भावी शिक्षकों को अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा के उद्देश्य पढ़ाये जाते हैं। उन्हें यही पढ़ाया जाता है कि शिक्षा वह है जो व्यक्ति को मुक्त करती है, उसकी अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास करती है, व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक और एक अच्छा इंसान बनाती है ताकि वह जीविकोपार्जन करता हुआ जीवन के परम उद्देश्य को प्राप्त कर सके। और दूसरी ओर इन उद्देश्यों की प्राप्ति को नकारते हुए प्रशिक्षण और उसके बाद क्रियान्विति से मुंह मोड़ते हैं। कथनी व करनी में अंतर देखने वाले शिक्षक आरंभ से ही तैयार किये जाते हैं। 'न च मे निवृत्ति' वाली दुर्योधन की मानसिकता स्वयं फैला रहे हैं। शिक्षा में न तो आज जीविकोपार्जन को सही दिशा दी जा रही है और न अच्छे इंसान बनाने को। यदि शिक्षा से संबंधित राजनेता, शिक्षा शास्त्री और शिक्षा प्रशासक यह समझते हों कि

शिक्षा के जो उद्देश्य बताये जाते हैं वे वास्तव में हमारी शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य नहीं हो सकते, तो उन्हें शिक्षा शास्त्र से हटा दिये जाने चाहिये। और यह स्पष्ट घोषित करना चाहिये कि मात्र जानकारियां व सूचनाओं का प्रेषण व उन्हें यों का यों बालकों से उगलवाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। फिर ऐसा ही भावी शिक्षकों को भी अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाया जाना चाहिये।

### दीया जलाएं

यदि हम शिक्षा के उद्देश्यों को ऐसे परिवर्तित नहीं कर सकते हों, तो फिर यही उपाय है कि हम मन की चालाकियों को समझें, 'न च मे निवृत्ति' की प्रवृत्ति छोड़ें, सच्चे बनें और जिसे ठीक समझते हों उसे करने का संकल्प लें। दुनियां में कोई बात कठिन नहीं है, रास्ते अनेक हैं। यदि कोई कठिन है तो वह स्वयं व्यक्ति व उसका मन है। एक छोटा सा कदम ही बड़ी मंजिल तक पहुंचाता है। एक सीधा-साधा किसान पहाड़ियों की यात्रा को जा रहा था। हरियाली से ढंकी चोटियां उसे अपने खेत से ही दिखाई पड़ती थीं। बहुत बार मन में आशंका होती थी कि निकट से जाकर देखें परन्तु कभी कुछ कारण हो जाते थे कि वह नहीं जा पाया। दिन को जाना कठिन था क्योंकि कठिन चढ़ाई और भी कठिन हो जाती थी। पर पहले रात्रि में जाने के लिये उसके पास लालटेन नहीं थी। एक दिन वह लालटेन भी ले आया। रात्रि दो बजे ही उठ गया और पहाड़ियों के लिए निकल पड़ा। लेकिन गांव के बाहर आकर रुक गया। मन में चिन्ता हो गई, जाना है दस मील और लालटेन की रोशनी है दस कदम पड़ने वाली, तो कैसे पूरा पड़ेगा? क्या जाना उचित है? वह गांव के बाहर ही बैठा रहा और सूर्य के निकलने का इंतजार करने लगा। तभी उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी उसके पास से ही पहाड़ियों की तरफ जा रहा है। उसके हाथ में तो और भी छोटी लालटेन थी। उसने वृद्ध को रोककर अपनी दुविधा बताई तो वृद्ध खूब हंसने लगा और बोला, "पागल। तू पहले दस कदम तो चल, जितना दिखता है उतना तो आगे बढ़। फिर इतना ही और आगे दीखने लगेगा।" वह युवक समझा, उठा और सूर्य निकलने के पूर्व ही वह पहाड़ियों पर था।

सौ साल अंधेरा रहा हो यदि दीया जलाया जाये तो एक क्षण में अंधेरा विलीन हो जाता है। ऐसा नहीं है कि सौ साल दीया जलाने पर सौ साल पुराना अंधेरा जाएगा। पूर्व सेवा और सेवारत प्रशिक्षणों में यदि दिव्यता का दीया जलाना आरंभ करें तो निश्चित ही एक छोटा कदम एक दिन मंजिल पर अवश्य पहुंचा देगा। इसमें संकल्प, सातत्य व धैर्य ही हमारी मदद कर सकता है। ♦